अधिकार 7 - भाव चूलिका
363 मिथ्यामत

Presentation Developed By:
Smt Sarika Vikas Chhabra

असिदिसदं किरियाणं, अक्किरियाणं च आहु चुलसीदी।
सत्तट्ठण्णाणीणं, वेणयियाणं तु बत्तीसं ॥876॥

- अर्थ—क्रियावादियों के 180, अक्रियावादियों के 84, अज्ञानवादियों के 67 और वैनयिकवादियों के 32 भेद हैं ॥876॥

एक वस्तु में वस्तुत्व को निपजाने वाली दो विरूद्ध शक्तियों का एक साथ प्रकाशित होना अनेकान्त है ।

अनेक + अंत = अनेकांत

न एक + अंत = अनेकांत

जिसमें एक नहीं, दो धर्म हैं, वह अनेकांत हैं ।

ये दो धर्म विरोधी धर्म हैं । यथा नित्य-अनित्य, एक-अनेक, सत्-असत् आदि ।

एकांत

एकांत = एक + अंत

एक ही अंत याने वस्तु धर्म को ग्रहण करना एकांत है ।

पदार्थ अनेकांत-स्वभावी है, विरोधी धर्म स्वभावी है ।

परन्तु उन दोनों धर्मों को पदार्थ में ना ग्रहण कर एक ही धर्म को स्वीकारना, दूसरे का निषेध कर देना एकांत है ।

www.jainelibrary.org

ऐसे एकांत पर आधारित 363 मत कहे गये हैं । उनके भेद इस प्रकार हैं -

क्रियावादी
180

अक्रियावादी
84

अज्ञानवादी
67

वैनयिकवादी
32

www.JainKosh.org

अत्थि सदो परदोवि य, णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था ।
कालीसरप्पणियदि-सहावेहि य ते हि भंगा हु ॥877॥

- अर्थ—पहले 'अस्ति' ऐसा पद लिखना,
- उसके ऊपर 'स्व से', 'पर से', 'नित्यपने से', 'अनित्यपने से' – ऐसे 4 पद लिखने,
- उनके ऊपर जीवादि 9 पदार्थ लिखने,
- उनके ऊपर 'काल', 'ईश्वर', 'आत्मा', 'नियति', 'स्वभाव' – इस तरह 5 पद लिखने।
- इस प्रकार 1 × 4 × 9 × 5 का गुणा करने से 180 भंग होते हैं ॥877॥

www.JainKosh.org

क्रियावादी के 180 भंग

काल		ईश्वर		आत्मा		नियति		स्वभाव	
जीव	अजीव	पुण्य	पाप	आस्रव	संवर	निर्जरा	बंध	मोक्ष	
स्वयं से		पर से		नित्यता से		अनित्यता से			
अस्ति									

इनके अक्षसंचार करने पर 180 भंग होते हैं ।

अस्ति 1 × स्वयं आदि से 4 × जीवादि पदार्थ 9 × कालादि 5 = 180 भंग

www.JainKosh.org

अत्थि सदो परदोवि य, णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था ।
एसिं अत्था सुगमा, कालादीणं तु वोच्छामि ॥878॥

- अर्थ—अस्ति; अपने से, पर से, नित्यपने से, अनित्यपने से — इन पाँचों का तथा नव-पदार्थ
- – इन कुल चौदह पदों का अर्थ तो सुगम है ।
- शेष काल आदिक पाँचों का अर्थ क्रम से कहते हैं ॥878॥

अस्ति आदि पदों का अर्थ

अस्ति	है, Existence, सत्ता, मौजूदगी
स्वयं से	स्वरूप चतुष्टय से अस्ति याने स्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्तित्व मानना
पर से	पर-चतुष्टय से अस्ति याने पर द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से अस्तित्व मानना
नित्यपने से	शाश्वत, सर्वदा अस्तित्व मानना
अनित्यपने से	क्षणिक अस्तित्व मानना (Momentary)

क्रियावादी पदार्थ को अस्तिरूप ही मानकर क्रिया की स्थापना करता है, क्रियायें करता है ।
इसलिए 'अस्ति' धर्म को लेकर ये सब भंग बनाता है ।

जीवादि पदों का अर्थ

जीव	• जो चेतन है, संवेदन करता है वह जीव है ।
अजीव	• जो जीव से भिन्न है, अचेतन है, वह अजीव है ।
पुण्य	• शुभ काय-वचन-मन की प्रवृत्ति तथा तदनुसार भाव; पुण्य है ।
पाप	• अशुभ काय-वचन-मन की प्रवृत्ति तथा तदनुसार भाव; पाप है ।
आस्रव	• कर्म आगमन का कारण एवं कर्म का आना आस्रव है ।
संवर	• कर्म आना रुकना एवं रुकने के कारणभूत भाव; संवर है ।
निर्जरा	• पूर्वबद्ध कर्म का जीव से पृथक् होना एवं पृथक् होने के कारणभूत भाव; निर्जरा है ।
बंध	• कर्म का जीव से जुड़ना एवं जुड़ने के कारणभूत रागादि भाव; बंध है ।
मोक्ष	• कर्म का जीव से अत्यंत वियुक्त होना एवं जीव की शुद्ध दशा प्रकट होना मोक्ष है ।

www.JainKosh.org

कालो सव्वं जणयदि, कालो सव्वं विणस्सदे भूदं ।
जागत्ति हि सुत्तेसु वि, ण सक्कदे वंचिदुं कालो ॥879॥

- अर्थ—काल ही सबको उत्पन्न करता है और काल ही सबका नाश करता है, सोते हुये प्राणियों में काल ही जागता है, ऐसे काल के ठगने को कौन समर्थ हो सकता है
- – इस प्रकार काल से ही सबको मानना यह कालवाद का अर्थ है ॥879॥

कालवाद

काल ही सबको पैदा करता है, सबको नष्ट करता है ।

सबके सो जाने पर भी काल जागृत रहता है ।

काल को धोखा देना शक्य नहीं है ।

इस प्रकार काल (समय) के द्वारा ही सर्व कार्य मानना कालवाद है ।

www.JainKosh.org

अण्णाणी हु अणीसो, अप्पा तस्स य सुहं च दुक्खं च ।
सग्गं णिरयं गमणं, सव्वं ईसरकयं होदी ॥880॥

- अर्थ—आत्मा अज्ञानी है, असमर्थ है अर्थात् कुछ भी नहीं कर सकता ।
- उस आत्मा का सुख-दुःख, स्वर्ग तथा नरक में गमन आदि सब ईश्वर का किया हुआ होता है ।
- ऐसे ईश्वर द्वारा सब कार्य मानना ईश्वरवाद का अर्थ है ॥880॥

ईश्वरवाद

आत्मा स्वयं अज्ञानी है, असमर्थ है ।

ऐसे आत्मा को सुख-दुःख, स्वर्ग-नरक में गमनादि ईश्वर द्वारा ही किया जाता है ।

ईश्वर ही ज्ञानी एवं सर्वकार्य करने में समर्थ है ।

ऐसे सर्वकार्य ईश्वर (भगवान) द्वारा ही मानना ईश्वरवाद है ।

www.JainKosh.org

एक्को चेव महप्पा, पुरिसो देवो य सव्ववावी य ।
सव्वंगणिगूढोवि य, सचेयणो णिग्गुणो परमो ॥881॥

- अर्थ—संसार में एक ही महान् आत्मा है, वही पुरुष है, वही देव है और वह सबमें व्यापक है, सर्वांगपने से अगम्य (छुपा हुआ) है, चेतना सहित है, निर्गुण है और उत्कृष्ट है
- – इस तरह आत्मस्वरूप से ही सबको मानना आत्मवाद का अर्थ है ॥881॥

आत्मवाद

ऐसे एक आत्मा को ही
सर्वकर्ता मानना
आत्मवाद है।

एक ही महान आत्मा है,

वही पुरुष है,

देव है,

सर्वव्यापक है,

सर्वांगरूप से अगम्य है,

सचेतन है,

निर्गुण है,

उत्कृष्ट है ।

www.JainKosh.org

जत्तु जदा जेण जहा, जस्स य णियमेण होदि तत्तु सदा ।
तेण तहा तस्स हवे, इदि वादो णियदिवादो दु ॥882॥

- अर्थ—जो जिस समय जिससे जैसे जिसके नियम से होता है
- वह उस समय उससे वैसे उसके ही होता है
- – ऐसे नियम से ही सब वस्तु को मानना,
- उसे नियतिवाद कहते हैं ॥882॥

नियतिवाद

जो	वह
जिस काल में	उस काल में
जिसके द्वारा	उसके द्वारा
जैसा	वैसा
जिसको	उसको
नियम से होता है	नियम से होता है

उदाहरण

जो जन्म	वह जन्म
जिस काल में (सुबह/रात्रि)	उस काल में
जिस (मां/व्यक्ति/भगवान/शरीर) के द्वारा	उसके द्वारा
जैसा (गर्भ/उपपाद/सम्मूर्छन)	वैसा
जिसको (जिस व्यक्ति को)	उसको
होता है / होना है	नियम से होता है

इस प्रकार 'नियति ही ऐसी है', 'ऐसा होना ही नियत है'
ऐसा नियति से सर्व कार्य मानना नियतिवाद है।

को करइ कंटयाणं, तिक्खत्तं मियविहंगमादीणं ।
विविहत्तं तु सहाओ, इदि सव्वंपि य सहाओत्ति ॥883॥

- अर्थ—कांटे आदि को लेकर जो तीक्ष्ण वस्तुयें हैं उनका तीक्ष्णपना कौन करता है?
- मृग तथा पक्षी आदिकों में जो विविधता पायी जाती है उसे कौन करता है?
- ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देता है कि ऐसा सबमें स्वभाव ही है ।
- ऐसे सबको कारण के बिना स्वभाव से ही मानना स्वभाववाद का अर्थ है।
- इस प्रकार कालादि की अपेक्षा एकांत पक्ष के ग्रहण कर लेने से क्रियावाद होता है ॥883॥

www.JainKosh.org

स्वभाववाद

कंटक (कांटा) आदि को तीक्ष्ण कौन करता है?

मृग, पक्षी आदि के विविध रूप-रंगों को कौन करता है?

इत्यादि प्रश्न होने पर कहता है — कोई नहीं करता है । स्वभाव ही ऐसा है ।

सब कार्य बिना कारण के, स्वभाव से ही इस प्रकार हैं ।

ऐसा मानना स्वभाववाद है ।

इन क्रियावादियों के भंग इस प्रकार बनेंगे -

1) काल के द्वारा जीव स्वयं से है ।

2) काल के द्वारा जीव पर से है ।

3) काल के द्वारा जीव नित्यपने से है ।

4) काल के द्वारा जीव अनित्यपने से है ।

5) काल के द्वारा अजीव स्वयं से है ।

6) काल के द्वारा अजीव पर से है ।

7) काल के द्वारा अजीव नित्यपने से है ।

8) काल के द्वारा अजीव अनित्यपने से है ।

इस प्रकार पुण्य, पाप आदि 9 पदार्थों को कहने पर 9×4 = 36 भंग बनते हैं ।

www

अगले भंग ईश्वरवाद की अपेक्षा बनेंगे–

37) ईश्वर के द्वारा जीव स्वयं से है।

38) ईश्वर के द्वारा जीव पर से है।

39) ईश्वर के द्वारा जीव नित्यरूप है।

40) ईश्वर के द्वारा जीव अनित्यरूप है।

सर्व 180 भंग

इस प्रकार अजीव, पुण्य आदि 9 पदार्थों के कहने पर 9×4 = 36 भंग बनते हैं।

इसी प्रकार आत्मा, नियति, स्वभाववादी के 36-36 भंग बनते हैं।

सब मिलाकर 180 भंग होते हैं।

इनमें प्रथम पंक्ति कर्ता की है । अर्थात् किसके द्वारा यह जीवादि पदार्थ किये गये हैं ।

कोई काल (समय) को बलवान मानकर इनका कर्ता काल को कहता है ।

कोई ईश्वर को प्रधान मानकर सर्व चराचर कार्य ईश्वरकृत कहता है ।

भंगों का अर्थ

कोई एक सर्व-व्यापक अद्वैत आत्मा मानकर सबका कर्ता आत्मा को मानता है ।

कोई ऐसा मानता है, जब जो होना निश्चित है, वह वैसा होता ही है, ऐसी ही नियति है, इसमें किसने किया आदि प्रश्न ही नहीं हैं, यह नियति है - ऐसा कोई नियतिवादी कहता है ।

कोई स्वभाव ही है ऐसा, स्वभाव ही कर्ता है – ऐसा स्वभाव का आश्रय करके कहता है ।

इस प्रकार से प्रथम पंक्ति किसने किया ? इस प्रश्न को लेकर नाना मान्यताओं को बताती है ।

भंगों का अर्थ

दूसरी पंक्ति 'कर्म' को बताती है । कर्ता ने किया, तो किसे किया? जीव को किया; अजीव, पुण्य-पाप आदि को किया । अत: यह कार्य/कर्म के विकल्प हैं ।

तीसरी पंक्ति 'कर्म को किस प्रकार का किया?' – यह बताती है । जैसे जीव को स्व-चतुष्टय से किया, पर-चतुष्टय से किया, नित्यरूप किया या अनित्यरूप किया ? याने काल ने जीव को स्व-चतुष्टय से किया / बनाया, काल ने जीव को पर-चतुष्टय से किया, काल ने जीव को नित्यरूप किया आदि ।

चतुर्थ पंक्ति में 'किस क्रिया को किया?' — यह बताया है । यहां अस्तिरूप क्रिया है। याने जीव, अजीव को 'अस्ति' किया, सद्भाव किया — यह चतुर्थ पंक्ति का तात्पर्य है।

णत्थि सदो परदोवि य, सत्तपयत्था य पुण्णपाऊणा ।
कालादियादिभंगा, सत्तारि चदुपंतिसंजादा ॥884॥

- अर्थ—पहले 'नास्ति' पद लिखना,
- उसके ऊपर 'स्व से', 'पर से' – ये दो पद लिखने चाहिये,
- उनके ऊपर पुण्य-पाप के बिना सात पदार्थ लिखने,
- उनके ऊपर काल को आदि लेकर 5 पद लिखने चाहिये ।
- इस प्रकार चार पंक्तियों का गुणा करने से 1 × 2 × 7 × 5 = 70 भंग होते हैं ॥884॥

अक्रियावादियों के भंग

काल	ईश्वर	आत्मा		नियति		स्वभाव
जीव	अजीव	आस्रव	संवर	निर्जरा	बंध	मोक्ष
स्वतः		परतः				
नास्ति						

इनके भंग नास्ति 1 × स्वतः, परतः 2 × जीवादि 7 × कालादि 5 = 70 होते हैं ।

अक्रियावादी वस्तु को नास्तिरूप मानकर क्रियाओं की स्थापना नहीं करता है ।

अक्रियावादी पदार्थों को नास्ति मानता है अर्थात् अस्तित्व रहित मानता है ।

अभाव मानकर फिर क्रियाकांड का खंडन करता है ।

शेष 'स्व से, पर से' आदि पदों के अर्थ जैसे पूर्व में कहे थे, वैसे ही हैं ।

अक्रियावादियों के भंग इस प्रकार बनेंगे -

1. काल के द्वारा जीव स्वतः नहीं है ।

2. काल के द्वारा जीव परतः नहीं है ।

3. काल के द्वारा अजीव स्वतः नहीं है।

4. काल के द्वारा अजीव परतः नहीं है।

ऐसे सात तत्त्वों के भंग 14 बनते हैं ।

15. ईश्वर के द्वारा जीव स्वतः नहीं है ।

16. ईश्वर के द्वारा जीव परतः नहीं है ।

17. ईश्वर के द्वारा अजीव स्वतः नहीं है ।

18. ईश्वर के द्वारा अजीव परतः नहीं है ।

इस प्रकार ईश्वर संबंधी भी 14 भंग बनते हैं ।

ऐसे शेष आत्मा आदि के भी 14, 14 भंग बनते हैं। जिससे कुल भंग 14×5 = 70 होते हैं ।

णत्थि य सत्तपदत्था, णियदीदो कालदो तिपंतिभवा ।
चोद्दस इदि णत्थित्ते, अक्किरियाणं च चुलसीदी ॥885॥

- अर्थ—पहले 'नास्ति' पद लिखना,
- उसके ऊपर सात पदार्थ लिखने,
- उनके ऊपर 'नियति', 'काल' ऐसे दो पद लिखने
- – इस प्रकार तीन पंक्तियों के गुणा करने से 1 × 7 × 2 = 14 भेद नास्तिपने में हुये ।
- पहले के 70 और उपर्युक्त 14 – ये सब मिलकर 84 अक्रियावादियों के भेद होते हैं ॥885॥

www.JainKosh.org

अक्रियावादी के भंग

नियति				काल		
जीव	अजीव	आस्रव	संवर	निर्जरा	बंध	मोक्ष
नास्ति						

यहां नियति और काल के प्रत्येक के 7 तत्त्व की अपेक्षा 7-7 भंग होते हैं ।

कुल 14 भंग हुये ।

पूर्व के 70 भंग में ये 14 जोड़ने पर कुल 84 भंग अक्रियावादी के होते हैं ।

www.JainKosh.org

इनके भंग इस प्रकार बनेंगे -

1) नियति के द्वारा जीव नहीं है । याने यह नियति ही है कि जीव होना ही नहीं है ।

2) नियति के द्वारा अजीव नहीं है । याने यह नियति ही है कि अजीव होना ही नहीं है ।

ऐसे नियतिवाद के 7 भंग है ।

8) काल के द्वारा जीव नहीं है । याने काल ने जीव को होने नहीं दिया, नष्ट कर दिया आदि ।

ऐसे 7 भंग काल के होते हैं । कुल 14 भंग हुये ।

प्रश्न- पूर्व के 70 भंगों से इनमें क्या विशेषता हुई?

उत्तर- पूर्व के भंगों में स्व-चतुष्टय या परचतुष्टय से नास्ति कहा था । याने किसी एक धर्म से नास्ति कहा था ।

परन्तु यहां स्व-पर चतुष्टय को छोड़कर सर्व प्रकार से नास्ति माना है ।

जैसा कि सामान्यत: लोग बिना स्व-पर चतुष्टय को विचारे कहते हैं – 'यह काम नहीं हुआ क्योंकि ऐसा नहीं होना ही नियत था।', 'मोक्ष नहीं हुआ क्योंकि काल ने नहीं होने दिया। काल बलवान है।'

इनमें स्व-पर चतुष्टय का विकल्प नहीं है । प्रथम कूट में स्व-पर चतुष्टय का विकल्प भी लिया है । यह इन दोनों में प्रधान अंतर है ।

को जाणइ णवभावे, सत्तमसत्तं दयं अवच्चमिदि ।
अवयणजुद सत्ततयं, इदि भंगा होंति तेसट्ठी ॥886॥

- अर्थ—जीवादिक नव पदार्थों में से एक-एक का सप्तभंग से न जानना
- जैसे कि 'जीव' अस्तिस्वरूप है – ऐसा कौन जानता है, तथा नास्ति, अस्ति-नास्ति, अवक्तव्य, और शेष तीन भंग – इस तरह 7 भंगों से कौन जीव को जानता है?
- इस प्रकार 9 पदार्थों का 7 भंगों से गुणा करने पर 63 भंग होते हैं ॥886॥

अज्ञानवाद के भंग

जीव	अजीव	पुण्य	पाप	आस्रव	संवर	निर्जरा	बंध	मोक्ष
अस्ति	नास्ति		अस्ति-नास्ति	अवक्तव्य	अस्ति अवक्तव्य		नास्ति अवक्तव्य	अस्ति-नास्ति अवक्तव्य
कौन जानता है (अर्थात् कोई नहीं)								

अज्ञानवादी यह मानता है कि इन पदार्थों को इस प्रकार से जानने वाला कोई नहीं है ।

वस्तुतः सप्तभंगी ही नहीं है ।

वह पदार्थ के किसी एक ही पक्ष को जानकर (अथवा बिना कुछ जाने) शेष पक्षों को अज्ञान कहता है।

इस प्रकार इसके अज्ञानरूप मान्यताओं के 63 भंग होते हैं ।

अस्ति आदि सात भंगों के अर्थ

अस्ति	• स्व-चतुष्टय से वस्तु अस्ति याने है ।
नास्ति	• पर-चतुष्टय से वस्तु नास्ति याने नहीं है ।
अस्ति-नास्ति	• वस्तु स्व-चतुष्टय से है, पर-चतुष्टय से नहीं है — ऐसा क्रम से कहा जा सकता है ।
अवक्तव्य	• वस्तु है और नहीं है — ऐसा युगपत् प्रकट करने वाला कोई वचन नहीं है । इसलिए वस्तु अवक्तव्य है ।
अस्ति-अवक्तव्य	• वस्तु स्व-चतुष्टय से है तथा युगपत् अस्ति-नास्ति की अपेक्षा अवक्तव्य है ।
नास्ति-अवक्तव्य	• वस्तु पर-चतुष्टय से नहीं है तथा युगपत् अस्ति-नास्ति की अपेक्षा अवक्तव्य है ।
अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य	• वस्तु स्व-चतुष्टय से है, पर-चतुष्टय से नहीं है — ऐसा क्रमत: वक्तव्य होने पर भी युगपत् वक्तव्य संभव नहीं है । अत: अस्ति-नास्ति-अवक्तव्य है ।

ऐसा कौन जानता है कि (याने कोई नहीं जानता है, याने ऐसा कुछ है ही नहीं) —

1) जीव अस्ति है ।

2) जीव नास्ति है ।

इस प्रकार अज्ञानवाद के भंग बनेंगे -

3) जीव अस्ति-नास्ति है ।

4) जीव अवक्तव्य है ।

5) जीव अस्ति-अवक्तव्य है ।

6) जीव नास्ति-अवक्तव्य है ।

7) जीव अस्ति-नास्ति अवक्तव्य है ।

ऐसे जीव पदार्थ के प्रति 7 भंग हुये । इसी प्रकार अजीव आदि प्रत्येक पदार्थ के साथ 7-7 भंग होते हैं । कुल भंग 7×9 = 63 होते हैं ।

को जाणइ सत्तचऊ, भावं सुद्धं खु दोण्णिपंतिभवा ।
चत्तारि होंति एवं, अण्णाणीणं तु सत्तट्ठी ॥887॥

- अर्थ—पहले 'शुद्ध पदार्थ' ऐसा लिखना,
- उसके ऊपर अस्ति, नास्ति, अस्ति-नास्ति और अवक्तव्य ये चार लिखने,
- इन दोनों पंक्तियों से चार भंग उत्पन्न होते हैं ।
- जैसे शुद्धपदार्थ अस्तिरूप है, ऐसा कौन जानता है? इत्यादि ।
- इस तरह 4 तो ये और पूर्वोक्त 63; सब मिलकर अज्ञानवाद के 67 भेद होते हैं ॥887॥

www.JainKosh.org

अस्ति	नास्ति	अस्ति-नास्ति	अवक्तव्य

शुद्ध पदार्थ

अज्ञानवाद के शेष 4 भंग

ऐसा कौन जानता है कि

1) शुद्ध पदार्थ है।

2) शुद्ध पदार्थ नहीं है।

3) शुद्ध पदार्थ है और नहीं है।

4) शुद्ध पदार्थ अवक्तव्य है।

अर्थात् शुद्ध पदार्थ (जीव, अजीव) स्व-चतुष्टय से है — ऐसा कौन जानता है ? कोई भी नहीं । इस प्रकार अज्ञानरूप, नहीं जानने रूप भाव की जिसके प्रधानता है — ऐसा यह अज्ञानवाद है ।

मणवयणकायदाणग-विणवो सुरणिवइणाणिजदिवुड्ढे ।
बाले मादुपिदुम्मि य, कायव्वो चेदि अट्ठचऊ ॥888॥

- अर्थ—देव, राजा, ज्ञानी, यति, वृद्ध, बालक, माता, पिता
- – इन आठों का मन, वचन, काय और दान
- – इन चारों से विनय करना ।
- इस प्रकार वैनयिकवाद के भेद 8 × 4 अर्थात् 32 होते हैं ।
- ये विनयवादी गुण-अगुण की परीक्षा किये बिना विनय से ही सिद्धि मानते हैं ॥888॥

वैनयिकवाद के भंग

विनय करने से ही सर्व सिद्धि होगी, विनय ही सर्व सिद्धि का मूल कारण है — ऐसे भाव वाले वैनयिकवादी हैं ।

उनके भंग इस प्रकार हैं —

किसकी	देव	राजा	ज्ञानी	यति	वृद्ध	बालक	माता	पिता
किस प्रकार से	मन		वचन		काय		दान	
क्या करना	विनय							

भंगों के अर्थ

1) देव (भगवान, देवी-देवता) की मन से विनय/सन्मान/आदर करना ।

2) देव (भगवान, देवी-देवता) की वचन से विनय करना ।

3) देव (भगवान, देवी-देवता) की काय से विनय करना ।

4) देव (भगवान, देवी-देवता) की दान से विनय करना ।

इस प्रकार देव की चार प्रकार से विनय करने के 4 भंग हुये ।

इसी प्रकार राजा, ज्ञानी आदि की 4-4 प्रकार से विनय करने के 8×4 = 32 भंग होते हैं ।

www.jainkosh.org

प्रश्न- विनय करना तो अच्छी बात है । फिर उसे मिथ्यामतों में क्यों कह रहे हैं?

उत्तर- विनय करना तो अच्छी बात है, पर विनय ही करना अच्छी बात नहीं है । विनय से ही स्वर्ग-मोक्ष आदि मानना ठीक नहीं है । इसलिए एकांतिक अभिप्राय होने से विनयवाद मिथ्या है ।

www.JainKosh.org

मनादि से विनय कैसे ?

मन	मन में देव, राजा आदि के लिए सन्मान/आदर/पूज्य भाव होना।
वचन	वचनों द्वारा पूज्य शब्द कहना, पूजा/अर्चना/प्रशंसा कहना ।
काय	शरीर की नत चेष्टा करना, पूज्य जन के आने पर खड़ा हो जाना, चरण छूना आदि

सच्छंददिट्ठीहि वियप्पियाणि, तेसट्ठिजुत्ताणि सयाणि तिण्णि ।
पासंडिणं वाउलकारणाणि, अण्णाणिचित्ताणि हरंति ताणि ॥889॥

- अर्थ - इसप्रकार स्वच्छंद अर्थात् अपना मनमाना जिनका श्रद्धान है
- ऐसे पाखण्डी पुरुषों ने ये 363 भेद कल्पित किये हैं,
- जो व्याकुलता उत्पन्न करनेवाली और अज्ञानी जीवों के चित्त का हरण करनेवाली है ॥889॥

जिनकी स्वच्छन्द-दृष्टि है,

ऐसे पाखंडियों के

363 भेदवाले अनेक वचन

जीवों को व्याकुलता उत्पन्न करते हैं,

अज्ञानी जीवों के चित्त को हरते हैं।

ऐसे ये सारे अज्ञान के भेद जीवों को दुःखी करते हैं, अज्ञान/एकांत में डालकर समाधान नहीं होने देते, सत्य को देखने में बाधक होते हैं, ऐसे अज्ञान को स्वयं से दूर करो ।

www.jainkosh.org

आलसड्ढो णिरुच्छाहो, फलं किंचि ण भुंजदे।
थणं खीरादिपाणं वा, पउरुसेण विणा ण हि ॥890॥

- अर्थ- जो आलस्यसहित हो तथा उत्साह व उद्यमरहित हो वह कुछ भी फल नहीं भोग सकता।
- जैसे- स्तनों का दूध पीना पुरुषार्थ के बिना नहीं बन सकता, उसीप्रकार पुरुषार्थ से ही सब कार्य सिद्ध होते हैं — ऐसा मानना पौरुषवाद है ॥890॥

पौरुषवादी एकांतवादी

आलसी, निरुत्साही, उद्यमरहित व्यक्ति

कुछ भी फल/भोग को प्राप्त नहीं कर सकता ।

जैसे स्तन का दूध उद्यम से ही पीया जा सकता है ।

इसलिए सर्व कार्य पुरुषार्थ से सिद्ध होते हैं ।

पुरुषार्थ ही सर्व कार्य में समर्थ है ।

www.JainKosh.org

प्रश्न- मोक्ष भी पुरुषार्थ से होता है । आगम में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ भी कहे हैं । निरंतर इसकी प्रेरणा भी दी जाती है । फिर यह एकांतवाद कैसे ?

उत्तर- पुरुषार्थ करने का उपदेश देने पर भी पुरुषार्थ अकेले से ही कार्य की सिद्धि नहीं कही जाती ।

क्योंकि एक कार्य के होने में अंतरंग-बहिरंग अनेक कारण होते हैं ।

बिना काललब्धि, निमित्त आदि के भी कार्य नहीं हो पाता, योग्य पुरुषार्थ करने पर भी कार्य नहीं होता ।

इसलिए एकांत पुरुषार्थ से कार्यसिद्धि मानना मिथ्या है ।

दइवमेव परं मण्णे, धिप्पउरुसमण्णत्थयं ।
एसो सालसमुत्तुंगो, कण्णो हण्णइ संगरे ॥891॥

- अर्थ- मैं केवल दैव (भाग्य) को उत्तम मानता हूँ, निरर्थक पुरुषार्थ को धिक्कार हो।
- देखो, किले के समान ऊँचा कर्ण राजा युद्ध में मारा गया।
- इस प्रकार दैववाद से ही सिद्धि माननेवाला दैववादी है ॥891॥

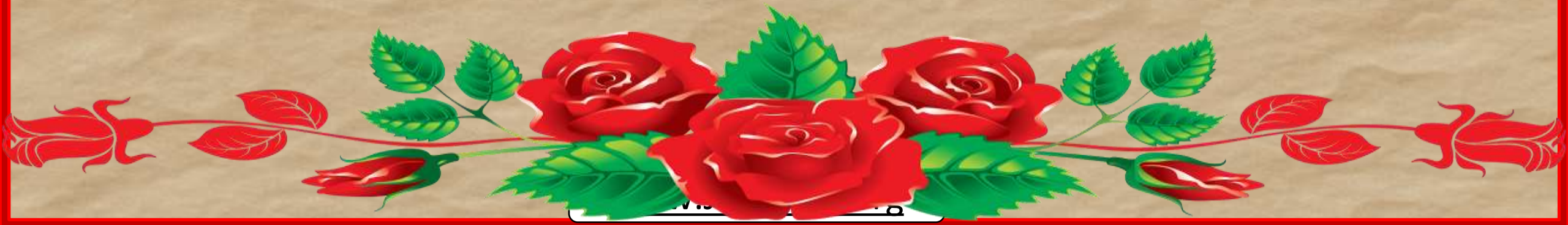

दैववादी एकांतवादी

देखो, पुरुषार्थ करने पर भी कोट के समान ऊंचा भाग्यहीन राजा कर्ण संग्राम में मारा गया ।

दैव याने भाग्य, किस्मत, कर्म का उदय, Luck

दैववादी कहता है -

मैं दैव को ही सर्वस्व/उत्कृष्ट मानता हूं,

बेकार के पुरुषार्थ को धिक्कार है ।

www.JainKosh.org

प्रश्न- कर्म का उदय, दैव तो जैन भी मानते हैं। फिर दैव को एकांतवाद क्यों कहा है?

उत्तर- हर संसारी प्राणी का दैव/कर्मोदय/भाग्य है । परंतु वह दैव भी द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि सामग्री की सहायता से फलीभूत होता है । उस प्रकार की सहायक सामग्री का संयोग, वियोग कथंचित् अन्य कारणों की अपेक्षा रखता है ।

दूसरी बात यह है कि जो दैव है, वह भी जीवकृत है, ईश्वरकृत या स्वभावकृत नहीं । अर्थात् वह दैव भी जीव ने अपने पुरुषार्थ से रचा है । तब मात्र दैववश ही कार्य मानना योग्य नहीं है ।

तीसरा, बिना पुरुषार्थ के दैव भी फलित नहीं होता है । भाग्य में क्या है? — यह पुरुषार्थ प्रकट करता है ।

अतः दैव को ही सर्वस्व मानना एकांतवाद है । कार्य की सिद्धि में दैव को कथंचित् मानना ठीक है।

संजोगमेवेति वदंति तण्णा, णेवेक्कचक्केण रहो पयादि ।
अंधो य पंगू य वणप्पविट्ठा, ते संपजुत्ता णयरं पविट्ठा ॥892॥

- अर्थ – यथार्थ-ज्ञानी दो के संयोग से ही कार्यसिद्धि मानते हैं,
- क्योंकि एक पहिये से रथ नहीं चल सकता ।
- जैसे एक अन्धा और दूसरा पंगु वन में प्रविष्ट हुए, वन में आग लग जाने से अन्धा व पंगु दोनों मिलकर अर्थात् अंधे के कन्धे पर पंगु चढ़कर अपने नगर में प्रवेश कर गये।
- इस प्रकार संयोग से ही कार्यसिद्धि माननेवाला संयोगवादी है ॥892॥

संयोगवाद एकांतवाद

जो तत्त्वज्ञानी हैं, वे संयोग से ही कार्यसिद्धि हो मानते हैं ।

जैसे एक पहिये से रथ नहीं चलता है, दोनों का संयोग होने पर ही चल पाता है ।

जैसे अंधा और लंगड़ा वन में थे । वे एक-दूसरे का साथ पाकर ही नगर में प्रविष्ट हो पाए ।

ऐसे संयोगवादी पदार्थों के मिलने से ही सर्व सिद्धि मानता है ।

प्रश्न- संयोग तो कार्यों में दिखाई देता ही है । सर्वत्र संयोग करने के प्रयास दिखाई देते हैं । तो फिर इसमें गलत क्या है?

उत्तर- सांसारिक कार्यों में संयोग दिखाई देते हैं, पर संयोग के होने पर भी एक-एक पदार्थ में अपने-अपने में कार्य हुआ है, कुछ भिन्न कार्य पदार्थ के बाहर नहीं हो गया ।

अपने-अपने में कार्य होने पर निमित्त-नैमित्तिक भाववश कुछ कार्य दिखाई भी दें, तो वह भिन्न पदार्थ का स्वयं का कार्य है ।

जैसे दोनों पहियों के कार्य करने पर पहियों ने अपना घूमने का कार्य किया है । उनके घूमने पर, अन्य बाधक कारणों का अभाव होने पर, रथ का घूमना/गमन होता है ।

तो वह संयोगमात्र से कार्य सिद्ध नहीं हुआ । पदार्थों की स्वयं वैसी शक्ति होने पर कार्य हुआ है ।

2) संयोग होने पर भी संयोग मात्र से कार्य नहीं होता । वहां अन्य कारणों की अपेक्षा रहती है । जैसे दोनों पहियों के होने पर भी रथ के गमन में पुरुष की चेष्टा, मार्ग की उपलब्धि आदि भी कारण हैं ।

3) जो कार्य संयोग से होते माने जाते हैं, वे बिना संयोग के भी होते हैं । जैसे स्त्री-पुरुष के संयोग से सुख मानते हैं । परंतु बिना स्त्री संयोग के भी वीतरागियों को सुख देखा जाता है ।

4) मोक्षमार्ग में संयोग नहीं, संयोगों का अभाव करके मोक्ष प्राप्ति होती है । इसलिए संयोग मात्र से कार्यसिद्धि मानना और संयोगों को इकट्ठा करने में जुटे रहना एकांतवाद है ।

www.JainKosh.org

सइउट्ठिया पसिद्धी, दुव्वारा मेलिदेहि वि सुरेहिं ।
मज्झिमपंडवखित्ता, माला पंचसुवि खित्तेव ॥893॥

- अर्थ- एक ही बार उठी हुई लोकप्रसिद्धि देवों से भी मिलकर दूर नहीं हो सकती, अन्य की तो बात ही क्या?
- जैसे द्रौपदी ने केवल मध्यवर्ती पांडव अर्थात् अर्जुन को माला डाली, किन्तु लोक में प्रसिद्ध हो गया कि "पाँचों पांडवों के गले में वरमाला डाली है"। ऐसा लोकवादी है ॥893॥

लोकवाद एकांतवाद

एक बार ही उठी हुई लोक-प्रसिद्धि देवों से भी मिलकर दूर नहीं हो सकती ।

जैसे द्रौपदी ने अर्जुन के गले में माला डाली । किंतु 'पांचों पांडवों को माला डाली' — ऐसी प्रसिद्धि हो गई ।

ऐसा लोकवादी लोक में जो प्रवृत्ति है उसको ही मानता है । उसी लोक-प्रवृत्ति को जीवन चलाने का कारण मानता है । लोक-प्रवृत्ति से भिन्न कुछ भी करने में भयभीत रहता है ।

प्रश्न- लोक-प्रवृत्ति को तो जैन आगम भी मानता है । लोक-विरुद्ध कार्य करने का निषेध भी करता है । फिर यह दोषपूर्ण कैसे है ?

- उत्तर- लोक-प्रवृत्ति भी यथायोग्य स्वीकार्य है, परन्तु सर्वथा ही लोक-प्रवृत्ति अनुसार मानना योग्य नहीं है ।
- जो लोक-प्रवृत्ति धर्मविरुद्ध है, वह स्वीकार्य नहीं है ।
- कई लोक-प्रवृत्ति धर्म में बढ़ने नहीं देती, धर्मक्रियाओं में बाधक होती हैं, वे स्वीकार्य नहीं हैं ।
- जैसे प्रतिदिन घर में प्रात: से रात्रि तक घर के सदस्यों की ही देखभाल करना, धन का संग्रह ही करते रहना— यह लोक-प्रवृत्तियाँ हैं । तो क्या यह उचित प्रवृत्ति है? इसमें तो कल्याण का कोई ठहराव ही नहीं है ।
- ऐसे ही नग्न दिगंबर मुनिदशा लोक-प्रवृत्ति के विरुद्ध है, तो क्या उसे छोड़ देना चाहिए?
- कई बार लोक-प्रवृत्तियां अज्ञान का फल होती हैं, जैसे सती प्रथा ।
- तो ऐसी लोक-प्रवृत्ति प्रचलित होने पर भी मान्य नहीं हैं ।
- इसलिए मात्र लोक-प्रवृत्ति को ही सर्वस्व मानकर जीवन बनाना एकांतरूप है ।

जावदिया वयणवहा, तावदिया चेव होंति णयवादा।
जावदिया णयवादा, तावदिया चेव होंति परसमया ॥894॥

- अर्थ- जितने वचन के मार्ग हैं, उतने ही नयवाद हैं और
- जितने नयवाद है, उतने ही पर-समय हैं ॥894॥

कितने मिथ्यामत?

जो वचन बोले जाते हैं, वे किसी अपेक्षा से कहे जाते हैं । जहां जो अपेक्षा है, वही वहां नय है । क्योंकि नय का अर्थ 'अपेक्षा' है ।

विवक्षित अपेक्षा से ग्रहण करते हुए, अन्य अपेक्षाओं का अभाव करके ग्रहण करने पर वही ज्ञान/वचन मिथ्या हो जाता है ।

जैसे बालक ने मां को 'मां' कहा । अब यदि वह बालक अपनी अपेक्षा 'मां' मानता हुआ उसी स्त्री को अन्य अपेक्षाओं से 'पुत्री', 'बहु', 'पत्नी' आदि का अभाव कर दे, तो उसका वह 'मां' कहना/जानना एकांत से दूषित है, मिथ्या है, सारे वचनों के साथ इसी प्रकार है ।

इसलिए जितने नयवाद है, उतने ही मिथ्यामत हो जाते हैं । क्योंकि एक-एक नय को मानकर शेष सब नयों/अपेक्षाओं का अभाव करने पर मिथ्यामत हो जाता है ।

परसमयाणं वयणं, मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा ।
जइणाणं पुण वयणं, सम्मं खु कहंचि वयणादो ॥895॥

- अर्थ- परमत के वचन 'सर्वथा' रूप कहने से नियम से मिथ्या (असत्य) होते हैं और
- जैनमत के वचन 'कथंचित्' बोलने से सत्य है ॥895॥

अन्य दर्शन असत्य कैसे?

जो परसमय याने एकांतवादी है, वे मिथ्यामती हैं । क्योंकि उनके वचन/ज्ञान 'सर्वथा' के अभिप्राय से दूषित हैं । वे पदार्थ के विरोधी धर्मों को नहीं मानकर किसी एक ही धर्म को ग्रहणकर उतना ही पदार्थ को सर्वथा याने सर्व प्रकार से मानते हैं । जबकि पदार्थ उतना ही नहीं है । इसलिए परसमय वाले मिथ्यामती हैं ।

जैसे वस्तु नित्य-अनित्यरूप है । तो वस्तु को सर्वथा नित्य ही कहना या सर्वथा अनित्य ही कहना मिथ्या है । वस्तु इस प्रकार की सर्वथा नित्य ही या सर्वथा अनित्य ही उपलब्ध नहीं होती ।

इसी प्रकार पूर्व में कहे गये 'सर्वथा पुरुषार्थ से कार्यसिद्धि होती है', 'सर्वथा भाग्य से कार्यसिद्धि होती है' आदि वचनों/मान्यताओं में भी 'सर्वथा' पक्ष के कारण असत्य का दोष प्राप्त होता है ।

जैन दर्शन ही सत्य कैसे?

जो जैनों के वचन हैं, वे सारे सम्यक् हैं, सत्य हैं । क्योंकि जैन के वचन 'कथंचित्' वचन से शोभित हैं । कथंचित् का अर्थ 'स्यात्' है । 'स्यात्' अर्थात् किसी अपेक्षा से ।

जैन जो वचन कहते हैं, वे किसी अपेक्षा से कहते हैं । उस अपेक्षा से कहते हुये अन्य विद्यमान अपेक्षाओं का निषेध नहीं करते हैं । इसलिए जैनी के वचन सत्य हैं ।

जैसे पदार्थ को द्रव्य की अपेक्षा नित्य कहते हैं। उस समय पदार्थ को सर्वथा नित्य नहीं कहते, अन्य (पर्याय) अपेक्षा से पदार्थ को अनित्य भी जानते हैं । इसी प्रकार पुरुषार्थ से कार्यसिद्धि कहते हैं, तो उसी समय भाग्य, संयोग आदि की भी अपेक्षा को मानते हैं ।

अतः पदार्थ में संभव धर्मों को स्वीकारते हुये किसी एक अपेक्षा से कहता हुआ जैनी का 'स्यात्' वचन सम्यक् होता है ।

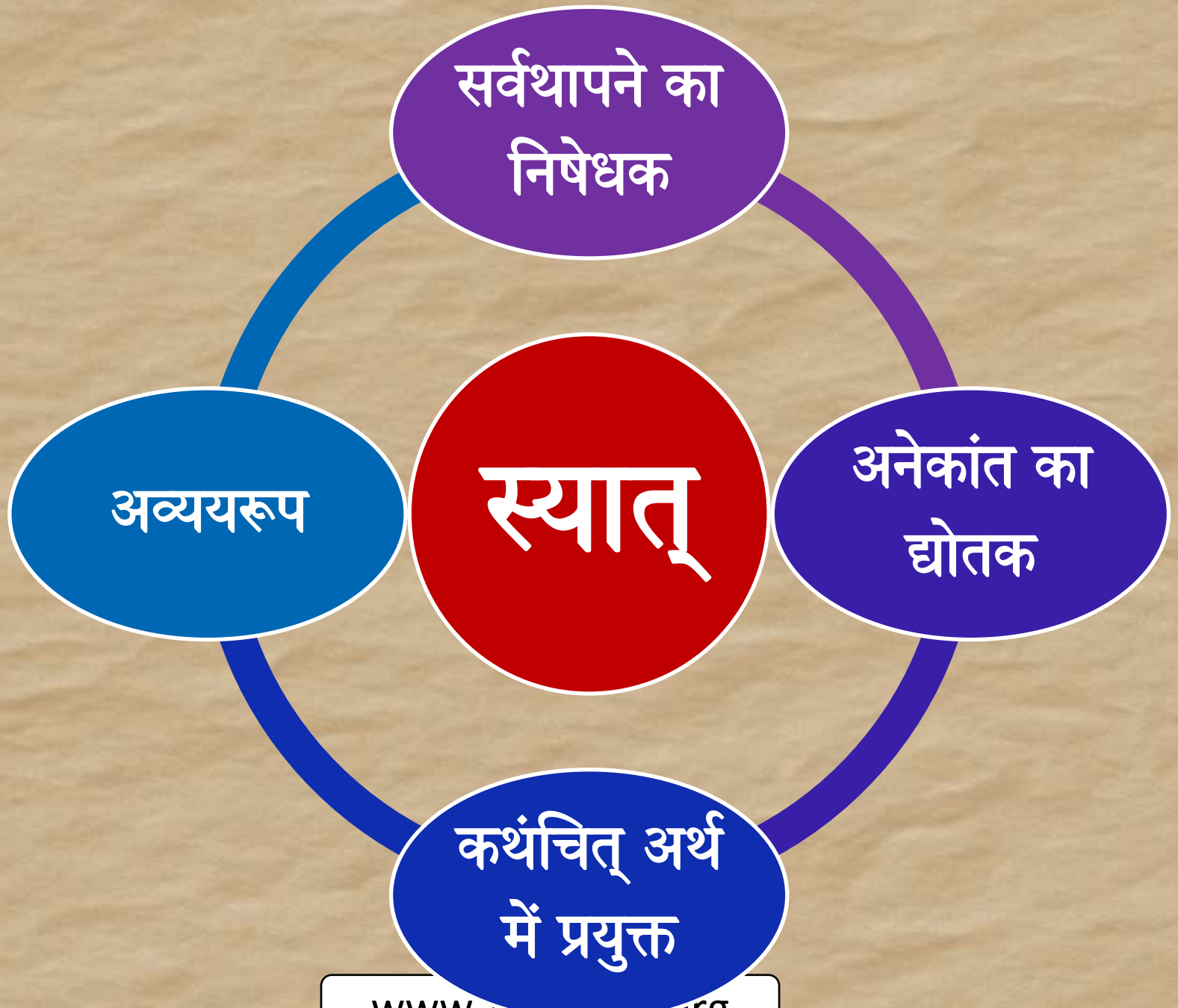

www.jain

- Reference : गोम्मटसार कर्मकांड, सम्यग्ज्ञान चंद्रिका

Presentation developed by

Smt. Sarika Vikas Chhabra

- For updates / feedback / suggestions, please contact
  - Sarika Jain, sarikam.j@gmail.com
  - www.jainkosh.org
  - ☎: 94066-82889

- इसी विषय के विडियो लेक्चर हमारे चैनल पर उपलब्ध हैं । आप अवश्य लाभ लें । www.Jainkosh.org/wiki/Videos पेज पर जाएँ एवं प्लेलिस्ट चुनें ।